

---

## इकाई 14 सांस्थानिक तथा प्रौद्योगिक कारक

---

### इकाई की रूपरेखा

- 14.0 उद्देश्य
- 14.1 प्रस्तावना
- 14.2 भूमि सुधार से पूर्व की कृषिक परिस्थितियाँ
  - 14.2.1 सुधारों के समय प्रचलित कृषिक प्रणालियाँ
  - 14.2.2 सांस्थानिक परिवर्तनों की आवश्यकता
- 14.3 स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् कृषिक सुधार, कानून एवं कार्यान्वयन
  - 14.3.1 मध्यस्थों का उन्मूलन
  - 14.3.2 काश्तकारी सुधार
  - 14.3.3 उच्चतम सीमा कानून
  - 14.3.4 कार्यान्वयन
- 14.4 कृषि संबृद्धि में प्रौद्योगिकी कारकों का योगदान
  - 14.4.1 बीजों की अधिक उपज वाली किस्में
  - 14.4.2 सिंचाई तथा जल प्रयोग
  - 14.4.3 रासायनिक उर्वरक
  - 14.4.4 यंत्रीकरण
- 14.5 सारांश
- 14.6 शब्दावली
- 14.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

---

### 14.0 उद्देश्य

---

इस इकाई में स्वतंत्रता के समय कृषिक ढाँचे के बारे में बताया गया है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् लागू किए विभिन्न भूमि सुधार उपायों का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया गया है। कृषि विकास में तकनीकी कारकों के योगदान का भी वर्णन किया गया है। इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप निम्नलिखित कर सकेंगे :

- भूमि सुधारों की आवश्यकता बता सकेंगे;
- भूमि सुधारों की सफलता व असफलता के पीछे कारण समझा सकेंगे; तथा
- कृषि विकास में विभिन्न प्रौद्योगिकी कारकों की भूमिका समझा सकेंगे।

---

### 14.1 प्रस्तावना

---

बढ़ता निवेश और बढ़ता बाज़ार कृषि विकास की आधारभूत आवश्यकताएँ हैं। लेकिन कृषि विकास के लिए जटिल प्रक्रियाओं व कार्यविधियों से घिरे संस्थानिक परिवर्तन, आर्थिक व राजनीतिक शक्ति का पुनः वितरण तथा आर्थिक संबृद्धि के लाभों का पुनर्वितरण करने हेतु नियोजित सरकारी नीति भी आवश्यक है। भूमि का स्वामित्व, विशेषतया गरीब कृषिक अर्थव्यवस्थाओं में, शक्ति, सामाजिक प्रतिष्ठा, विशेषाधिकार, नियंत्रण तथा स्थानीय संस्थाओं तक पहुँच से जुड़ा रहता है। भारत व तीसरी दुनिया के अन्य देशों के अनुभव से पता चलता है कि इन देशों में भूमि-वितरण ही आय-वितरण निर्धारित करता है। अतः भूमि सुधार एक ऐसा उपकरण

है जो ग्रामीण क्षेत्र में भूमि वितरण तथा शक्ति ढाँचे में परिवर्तन ला सकता है। भूमि सुधार कोई आधुनिक बात नहीं है। अपने अधिक समानता या सामाजिक न्याय की माँग के जवाब में ये वर्षों से होते आ रहे हैं।

## 14.2 भूमि सुधारों से पूर्व की कृषिक परिस्थितियाँ

स्वतंत्रता-प्राप्ति के समय भारत में तीन कृषिक प्रणालियाँ थीं। निजी कृषि भूमि के 57 प्रतिशत पर ज़मींदारी प्रणाली, 38 प्रतिशत पर रैयतवाड़ी प्रणाली तथा शेष 5 प्रतिशत पर महालवाड़ी प्रणाली थी। अधिक से अधिक भूमि-कर इकट्ठा करने के उद्देश्य से ब्रिटिश शासक भूमि और काशतकारी प्रणाली में फेर बदल करते रहे हैं। इन प्रणालियों का संक्षेप में वर्णन हम यहाँ कर रहे हैं।

### 14.2.1 सुधारों के समय प्रचलित कृषिक प्रणालियाँ

#### ज़मींदारी प्रणाली

भारत में ज़मींदारी प्रणाली इंग्लैण्ड की ज़मींदारी प्रणाली के आधार पर बनी थी। 18वीं तथा 19वीं शताब्दी का अंगरेज़ ज़मींदार अपनी भूमि का पूरा मालिक था और कृषि को आगे बढ़ाने में योग्य था। इसके विपरीत भारत का ज़मींदार केवल ऊँचे किराए पर काशतकारी के लिए देने और पैसा बनाने में रुचि रखता था न कि कृषि के विकास में। यह प्रणाली मुख्यतः भारत के पूर्वी भागों पश्चिम बंगाल, बिहार व उड़ीसा में प्रचलित थी। बंदोबस्त का प्रयत्न किया लेकिन ऐसा करना संतोषजनक नहीं पाया गया क्योंकि अपने विशेषाधिकारों को कायम रखने के उद्देश्य से ज़मींदार अधिक ऊँची बोली लगा देते थे और बाद में भुगतान नहीं कर पाते थे।

फिर उन्होंने स्थायी बंदोबस्त का सहारा लिया तथा ज़मींदार के लिए प्रतिवर्ष भूमि-कर निश्चित कर दिया। ज़मींदार अपने से नीचे के भूमिदारों से जितना भी इससे इकट्ठा कर पाता वह उसकी अपनी आमदनी मानी जाती थी।

ब्रिटिश शासकों द्वारा भारत में यह प्रणाली स्थापित करने के पीछे दो आधारभूत उद्देश्य : (1) भू-स्वामियों का एक ऐसा वर्ग बनाना जो भारत में ब्रिटिश शासन के आधार स्तम्भ बन सके; (2) पैसे वाले लोगों को भू-सम्पत्ति खरीदने तथा उसपर पूँजी लगाने के लिए उत्साहित करना। पहली अपेक्षा तो पूरी हो गई, लेकिन दूसरी अपेक्षा बिल्कुल भी न पूरी हो पाई। लेकिन, सरकार और किसान के बीच बिचौलियों की शृंखला बन गई थी। इस प्रक्रिया में उप-स्वामियों का एक वर्ग अस्तित्व में आ गया था। काशत-सुरक्षा सहित वास्तविक किसान के सभी पारम्परिक अधिकार छिन गए थे। कृषि मज़दूर बंधक मज़दूर बनकर रह गए थे।

#### रैयतवाड़ी प्रणाली

इस प्रणाली के अधीन प्रत्येक भूमिधर किसान के साथ-साथ अलग से बंदोबस्त किया गया था। उस किसान को रैयत कहते थे जो ज़मीन का स्वामी था और उसे इसे किराए पर देने, रहन रखने तथा हस्तांतरण करने का अधिकार था। जब तक वह एक पूर्वनिश्चित राशि सरकार को देता रहता था उसे भूमि से बेदखल नहीं किया जा सकता था। वह प्रणाली मद्रास तथा बम्बई में लागू की गई थी।

हालाँकि कि रैयतवाड़ी क्षेत्रों में कोई ज़मींदार या बिचौलिए नहीं थे और बंदोबस्त सीधा रैयत से था, लेकिन बड़े-बड़े रैयत भू-स्वामी कृषिक व्यवस्था पर हावी होने लगे तथा ज़मींदारी जैसा व्यवहार करने लगे। उन्होंने सामन्ती प्रकार के शोषण के कई तरीके अपनाए जैसे कि बटाई, उप-काशतकारी, बेदखली, जबरन श्रम, सूदखोरी आदि। रैयतवाड़ी क्षेत्रों में बड़े स्तर पर असुरक्षित काशतकारी विकसित हो गई। काशतकारी दूरवासी ज़मींदारी प्रथा (absentee landlordism) का रूप ले लिया। इसमें उन्हें केवल वार्षिक लगान वसूल करने से ही मतलब था और उन्होंने भूमि और कृषि सुधार में कोई रुचि नहीं दिखाई।

#### महालवाड़ी प्रणाली

यह प्रणाली प्रारम्भ में संयुक्त प्रान्त (United Provinces) (उत्तर भारत) में लागू की गई और बाद में पंजाब में भी लागू की गई। इस प्रणाली में पूरे गाँव के साथ बंदोबस्त किया गया था। हर भू-स्वामी गाँव का संयुक्त स्वामी था और लगान के भुगतान के लिए संयुक्त रूप में ज़िम्मेदार था।

### 14.2.2 सांस्थानिक परिवर्तनों की आवश्यकता

भारत में प्रचलित भू-प्रणालियों ने कृषि कुशलता में रुकावट डाली और ये उत्पादन बढ़ाने हेतु प्रौद्योगिकी सुधार लाने में सहायक नहीं थी। इसीलिए भूमि सुधारों की आवश्यकता पड़ी। इन प्रणालियों के मुख्य दोष ये थे :

- 1) सरकार और किसान के बीच बिचोलियों की एक शृंखला।
- 2) छोटे किसानों के बीच काश्तकारी असुरक्षा : यह ऋणग्रस्तता, रहन तथा स्वामित्व के अधिकार न होने के कारण थी। इससे किसान ने भूमि पर स्थायी सुधार लाने में कोई रुचि नहीं दिखाई।
- 3) किराए की ऊँची दर : इससे किसानों में उत्पादन करने का उत्साह नहीं रह गया था, विशेषतया बँटाई की दशा में।
- 4) छोटे और विखंडित जोत : इसके कारण कृषि तकनीक में सुधार लाना, विशेषता मशीनों का प्रयोग करना संभव नहीं था।
- 5) भूमि का असमान वितरण : इसके कारण ग्रामीण जनसंख्या के बड़े भाग के पास या तो कोई ज़मीन नहीं थी या फिर इतनी कम थी कि उसपर लाभकारी ढंग से खेती करना संभव न था।
- 6) प्रति हेक्टेयर बहुत कम उपज और गरीबी- कृषि क्षेत्र में सामान्य बात थी।
- 7) ग्रामीण स्तर पर प्रभावशाली व्यवस्था की कमी : दूसरी और किसान भी पूरी तरह अव्यवस्थित थे। प्रचलित कृषिक प्रणाली ने आर्थिक विकास में तीन प्रकार से गंभीर रुकावटें डालीं।

**प्रथम**, क्योंकि उपज का बड़ा भाग कुछ खर्च न करके भी भू-स्वामी ले जाता था, काश्तकार ने उत्पादन में वृद्धि लाने में कोई उत्साह नहीं दिखाया।

**दूसरे**, वास्तविक किसान के पास कुछ बचता ही नहीं था जो वह ज़मीन पर निवेश कर सके।

**तीसरे**, सम्पत्ति भूमि के रूप में थी। अतः काश्तकार अच्छा साज़ समान बीजों के प्रयोग में कोई रुचि नहीं दिखाता था।

**संक्षेप में**, प्रचलित कृषिक प्रणाली में ज़मींदार अमीर होते चले गए। बिचोलिए सम्पन्न हुए। किसान और काश्तकार कंगालों की तरह रहने लगे। इनके कारण आज़ादी के पश्चात् तुरंत भूमि सुधार लागू करने की आवश्यकता पड़ी।

## 14.3 स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् कृषिक सुधार, कानून व कार्यान्वयन

वांछित उद्देश्य पूरे करने के लिए कृषिक सुधार लाना आज़ादी प्राप्त करने के पश्चात् पहला कार्य था। आज के संदर्भ में कृषिक सुधार से अभिप्राय मध्यस्थों के उन्मूलन, काश्तकार की सुरक्षा, भूमि का पुनर्वितरण से है जोकि भूमि की उच्चतम सीमा निर्धारित कर और चक्रबंदी द्वारा प्राप्त किए जा सकते थे। इस संबंध में भारत में कांग्रेस कृषिक सुधार कमेटी से शुरू होकर बहुत-सी कमेटियाँ, पैनल या आयोग गठित किए गए, जिन्होंने ने बड़ी संख्या में दस्तावेज़ तैयार किए जिनमें वर्तमान स्थिति के बारे में चिंता जताई गई और उग्र हल बताए गए। इन दस्तावेज़ों के पीछे मंशा तो अच्छी थी, लेकिन मंशा और व्यवहार के बीच काफी अंतर था। अतः कृषिक सुधार नीति को लागू करने के लिए बहुत से कानून बनाए गए और लागू किए गए।

संक्षेप में, ग्रामीण भारत सामंती व सामंती जैसे कृषिक संबंधों से ग्रसित था। ऊँचे किराए, काश्तकारी असुरक्षा, जबरन श्रम, सूदखोरी आदि के रूप में किसानों का शोषण होता था। इससे एक ओर तो किसानों की गरीबी बढ़ी तथा दूसरी ओर कृषि उत्पादन गतिहीन हो गया। इससे इस बात की आवश्यकता महसूस हुई कि किसानों को सामंती संबंधों से बचने तथा कृषि विकास लाने के लिए कृषिक संबंधों का पुनर्निर्माण किया जाए।

### 14.3.1 मध्यस्थों का उन्मूलन

भूमि सुधार आर्थिक और राजनीतिक शक्ति के आधार में परिवर्तन लाते हैं। अंत शक्ति ढाँचे में निहित वर्गों का इनके बारे में नीति व इसके कार्यान्वयन पर प्रभाव अवश्य पड़ता है। शुरू का भूमि सुधार कुछ कार्यक्रम मध्यस्थों का उन्मूलन था। आम तौर पर मध्यस्थ से अभिप्राय ऐसे व्यक्ति से है जोकि किसान और राज्य के बीच मध्यस्थता करता है। इससे अभिप्राय ज़मींदारी प्रणाली से उत्पन्न कुछ मान्यता प्राप्त भूमि के स्वामित्व या उपस्वामित्व के अधिकार धारण करने वालों से है। इसमें रैयतवाड़ी क्षेत्रों के भू-स्वामी शामिल नहीं है।

मध्यस्थों के उन्मूलन के पीछे निम्नलिखित कारण थे :

- 1) परजीवी वर्ग (Parasite Class) के हाथों में भूमि का स्वामित्व केंद्रित था।
- 2) भूमि पर वास्तव में खेती करने वाले बड़ी संख्या में किसान-मज़दूर भूमि स्वामित्व से वंचित थे।
- 3) कृषि अर्थव्यवस्था गतिहीन थी जोकि बढ़ती हुई नई स्वतंत्र अर्थव्यवस्था की माँग पूरी करने में असमर्थ थी।

मध्यस्थों का उन्मूलन आज़ादी के तुरंत बाद प्रारंभ हो गया था।

इन सुधारों की सफलता के पीछे कई कारण थे :

- 1) मध्यस्थों का राष्ट्र विरोधी स्वरूप।
- 2) राष्ट्रीय संघर्ष के भाग के रूप में किसानों की ज़मींदारी के विरुद्ध लम्बा संघर्ष।
- 3) अन्दरूनी ग्रामीण क्षेत्रों में ज़मींदारों का अलग-थलग हो जाना।
- 4) ग्रामीण क्षेत्रों में राजनीतिक सत्ता के लिए उच्चवर्ग और ज़मींदारों के बीच संघर्ष।

इस उपाय के परिणामस्वरूप 1950 के दशक के मध्य तक सारे देश की लगान प्रशासन के ज़िम्मेदारी स्वयं सरकार ने अपने ऊपर ले ली थी। इससे भूमि स्वामित्व संबंधी रिकार्डों में सुधार हुआ। भूमि का हस्तांतरण, रहन व बिक्री अब बेहतर तरीके से हो सकती थी। जैसाकि रैयतवाड़ी क्षेत्रों में पहले होता था। कृषि विकास की व्यवस्था का भी अब बेहतर आधार था। इस उपाय की आलोचना दो आधार पर की गई थी। प्रथम, मुआवज़े की जो बड़ी रकमें दी गई थीं वह विलासिता उपभोग पर या शहरों में सम्पत्ति खरीदने पर खर्च कर दी गई। इसका केवल एक छोटा-सा भाग ही कृषि उत्पादन बढ़ाने पर निवेश किया गया था। मुआवज़ा देना भारत की सांविधानिक आवश्यकता थी। भारतीय संविधान में कोई भी सम्पत्ति बिना मुआवज़े के नहीं ली जा सकती थी। सरकारी रिकार्डों में अधिकतर ज़मींदारों के पास भू-स्वामित्व के अधिकार थे, अतः उन्हें मुआवज़े देना ज़रूरी था।

दूसरे, सर, खुदकाशत तथा भूमियों का मध्यस्थों द्वारा स्वयं खेती करने के लिए निजी सम्पत्ति के रूप में कानून के दायरे से बाहर रखा गया। मध्यस्थों के लिए कानून में बचाव का रास्ता था जिसका भरपूर लाभ इन्होंने उठाया। इस बचाव के रास्ते ने सामंती हितों के सामाजिक व आर्थिक आधार को बनाए रखा और काशतकारों को उस उपाय के लाभ से वंचित रखा। बड़े भू-स्वामियों ने अपनी सर व खुदकाशत भूमि खुद निर्धारित की और बड़े पैमाने पर काशतकारों और बटाईदारों को बेदखल किया। बड़े स्तर पर इस बेदखली ने भौतिक और नैतिक तौर पर ग्रामीण जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है और भूमि सुधारों से जाग्रत आशाओं और आकांक्षाओं को विफल कर दिया है।

वास्तव में, मध्यस्थों के उन्मूलन से भूमि स्वामित्व में असमानताओं एवं श्रमिकों की स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। हालाँकि इसने दखलकारों (Occupants) को स्थायी वंशागत एवं हस्तांतरणीय अधिकार दिलाने में सहायता की है। लेकिन, कानूनी ज़मींदारी समाप्त करने का काम अब लगभग पूरा हो चुका है जिससे दो करोड़ किसान राज्य के सीधे सम्पर्क में आ गए।

### 14.3.2 काशतकारी सुधार

काशतकारी कानून की विशिष्टताएँ भूमि सुधार नीति की उस आधारभूत रूपरेखा से उत्पन्न हुई जिसमें न तो बड़े स्तर पर ज़मींदारों के स्वामित्व अधिकार समाप्त करना था और न ही बड़े स्तर पर काशतकारों को बेदखल करना था। काशतकारी कानून के बारे में बीच का रास्ता अपनाया गया था। मध्यस्थों के उन्मूलन के कानून

के साथ-साथ काश्तकारों को भी संरक्षण देने की व्यवस्था की गई। ऐसा विशेषतया कानूनी ज़मींदारों वाले क्षेत्रों में किया गया। लेकिन काश्तकारी को संरक्षण देने के उपाय ने सामाजिक प्रक्रिया को विपरीत दिशा में मोड़ दिया और बड़े स्तर पर काश्तकार और बटाईदारों को बेदखल किया जाने लगा। बेदखली का अभियान इतना शक्तिशाली था कि काश्तकारी की सभी व्यवस्थाएँ टूट गईं और नई व्यवस्था बनाने में वर्षों लग गए। आगे वर्षों में अधिकतर राज्यों ने काश्तकारी कानून बनाने या उसमें फेरबदल करने का प्रयत्न किया, और साथ-साथ इससे बच निकलने के रास्तों को बंद करने का प्रयत्न किया ताकि काश्तकारों को प्रभावशाली सुरक्षा प्रदान की जा सके। पिछले 25 वर्षों में विभिन्न राज्यों में बने इन कानूनों की मुख्य बातें ये थीं :

- i) पट्टेदारी (Tenure) की सुरक्षा
- ii) काश्तकारी की समाप्ति
- iii) व्यक्तिगत खेती बहाल करना
- iv) अपनी इच्छा से कब्जा देना (Surrenders)
- v) किराया (Rent) नियंत्रण

विभिन्न राज्यों के काश्तकारी कानूनों में काफी विभिन्नताएँ होते हुए भी मौटे तौर पर इसका एक जैसा स्वरूप था।

काश्तकारी सुधारों में काफी प्रगति हुई है लेकिन इनके कानूनों में कई कमियाँ बनी हुई हैं। 'काश्तकार' की परिभाषा में बटाईदारों को, जिनकी संख्या बहुत अधिक है। शामिल नहीं किया गया है। इससे बटाईदारों को काश्तकारों के अधिकारों से वंचित रखा गया है।

छोटी-छोटी बातों पर काश्तकारों को बेदखल कर देना अभी भी होता है, जैसे किराया न देना, दी गई अवधि में भुगतान न करना, निश्चित समये पर फसल का हिस्सा न देना, भूमि को सही ढंग से जोतने के लिए करारनामा न करना आदि। भूमि से पूर्ण बेदखली वर्तमान सुधारों का सबसे बड़ा दोष है।

स्वैच्छिक कब्जा देना, जिसका प्रावधान कानून में है, शायद कभी ही स्वैच्छिक होता है यह काश्तकारों की सुरक्षा के विरुद्ध बहुत बड़ा हथियार बन गया है। चौथी योजना का सुझाव कि स्वैच्छिक तौर पर छोड़ी गई भूमि का कब्जा भू-स्वामी का नहीं दिया जाना चाहिए। किसी भी राज्य ने लागू नहीं किया है।

भूमि के पुनर्ग्रहण के अधिकार के पीछे यह औचित्य था कि भू-स्वामी अब स्वयं खेती करेंगे और उत्पादन में वृद्धि लाएँगे। जोर 'व्यक्तिगत खेती' पर था। लेकिन इसकी परिभाषा कुछ इस प्रकार की गई है कि भाड़े के मज़दूरों द्वारा खेती करवाना भी व्यक्तिगत खेती माना जाता है। चाहे यह मज़दूरी नगद दें या वस्तुओं के रूप में लेकिन बटाई के रूप में नहीं। भू-स्वामी या उसके परिवार द्वारा व्यक्तिगत देखभाल की भी कोई शर्त न थी। व्यक्तिगत खेती की ऐसी परिभाषा भू-स्वामियों के पास भूमि हथियाने का एक हथियार बन गई। इससे चोरी छुपे काश्तकारी होने लगी। जिसमें छिपे काश्तकार को खेतीहर मज़दूर या कृषि साझेदार कहा जाता था।

किरायों पर नियंत्रण न ला पाना भूमि सुधारों की एक बहुत बड़ी कमी थी। राज्यों के कानूनों में 'उचित किराये' की परिभाषा एक जैसी नहीं की गई। इसके अतिरिक्त, बटाईदारों असुरक्षित काश्तकारों पर यह कानून लागू करना एक कठिन कार्य है। इसके साथ-साथ जनसंख्या बढ़ने और कृषि क्षेत्र के बाहर रोज़गार के अवसरों के अभाव के कारण भूमि की माँग निरंतर बढ़ रही है। काश्तकारी सुधार का एक मुख्य उद्देश्य था। काश्तकारों को उस भूमि का स्वामी बनाना जिसको वे जोत रहे थे। यह उद्देश्य व्यवहारिक नहीं हो पाया क्योंकि काश्तकारों को मुआवजे की एक लम्बी रकम देनी पड़ती थी। इसके अतिरिक्त, काश्तकारों की अपनी इच्छा थी कि वे भूमि का स्वामित्व खरीदें या न खरीदें। कानून में यह प्रावधान है कि यदि काश्तकार यह सिद्ध कर सके कि लगातार 12 वर्ष तक भूमि का कब्जा उसके पास था तो वह उस जमीन का दखल अधिकार प्राप्त कर यानि उसे अपने नाम करवाने का अधिकार था। लेकिन यह प्रावधान अव्यवहारिक रहा क्योंकि भारत में भू-स्वामी काश्तकार संबंध कुछ इस प्रकार के रहे हैं कि एक साधारण काश्तकार के लिए कब्जा सिद्ध लगभग असंभव था। बेहतर होता अगर यह प्रावधान होता कि यदि कोई भी काश्तकार कानून के अधीन दखल-अधिकार का दावा पेश करे तो सिद्ध करने का भार भू-स्वामी पर पड़े न कि काश्तकार पर।

### 14.3.3 उच्चतम सीमा कानून

आज़ादी से पहले निजी भूमि की सीमा निर्धारण करने का सिद्धांत अखिल भारतीय किसान सभा ने सुझाया था। ज़मींदारी तथा रैयतवाड़ी दोनों क्षेत्रों में वर्तमान भूमि धारकों को स्वयं खेती करने के लिए अधिक से अधिक 25 एकड़ प्रति धारक भूमि ग्रहण करने की आज्ञा होगी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी उच्चतम सीमा का मामला उठाया था। इस प्रश्न के बारे में सत्ता क्षेत्र काफी असहमति थी। इसके तीन कारण थे। प्रथम, केवल ज़मींदारी पर ही नहीं पूरे भू-स्वामी वर्ग पर इसका सीधा प्रभाव पड़ता था। दूसरे, ये उपाय सामंतों तथा उपसामंतों पर ही लागू नहीं होते थे, सभी बड़े भूधारियों पर लागू होते थे। किसानों के उच्च वर्ग के हाथ में काफी भूमि थी और उन्हें यह सही डर था कि उनके हित भी प्रभावित हो सकते हैं।

भूमि की उच्चतम सीमा निर्धारित करने के पीछे निम्नलिखित उद्देश्य थे:

- i) किसानों की ज़मीन प्राप्त करने की व्यापक इच्छा को पूरा करना;
- ii) भूमि के स्वामित्व और उपयोग में असमानताओं को दूर करना;
- iii) कृषि आय में असमानता कम करना;
- iv) स्व-रोज़गार का दायरा बढ़ाना।

तीसरी पंचवर्षीय योजना में यह स्पष्ट घोषणा की गई थी कि कृषिक नीति, विशेषता उच्चतम सीमा निर्धारण, का एक उद्देश्य कृषिक प्रणाली से शोषण तथा सामाजिक अन्याय को मिटाना है। लेकिन इस नीति में भविष्य के भू-स्वामी वर्ग की स्पष्ट तस्वीर प्रस्तुत नहीं की गई थी।

उच्चतम सीमा निर्धारण उपाय एक पुनर्वितरण उपाय है। इसकी अत्यंत आवश्यकता तीन बातों से प्रभावित है: निर्भर जनसंख्या की तुलना में भूमि की स्थायी कमी; गैर-कृषि क्षेत्र की ओर जनसंख्या का सीमित हस्तांतरण तथा उत्पादन और रोज़गार बढ़ाने की आवश्यकता। लेकिन यह आवश्यकता व्यवहारिक रूप नहीं ले पाई। इस प्रकार आज़ादी के पचास साल बाद भी कृषिक सुधार कार्यक्रम उच्चतम सीमा निर्धारण अस्पष्ट ही बना हुआ है। यह एक अस्पष्ट राजनीतिक-आर्थिक अवधारणा बनी हुई है और कहीं छिपी बैठी है। सामाजिक न्याय के आधार पर तो यह तर्क संगत है लेकिन उत्पादन में वृद्धि लाने और कृषि विकसित करने के आधार पर नहीं।

उच्चतम सीमा कानून दो चरणों में बनाए गए और लागू किए गए। पहले चरण की अवधि 1972 तक थी। दूसरे चरण की अवधि राष्ट्रीय दिशा-निर्देश अपनाने के बाद 1972 के बाद की है। उच्चतम सीमा निर्धारण राज्य विषय है। अतः प्रत्येक राज्य ने अपना-अपना कानून बनाया। ऐसे में उन कानूनों में विविधता होना आवश्यक था। भूमि-धारकों की दो इकाइयाँ थीं, व्यक्ति और परिवार। परिवार और भूमि के प्रकार की परिभाषा अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग थी। इन कानूनों में बचने के बहुत से रास्ते थे जिसका बड़े भू-स्वामियों ने पूरा फायदा उठाया। उन्होंने कानून के लागू होने की आशा में पहले ही अपनी भूमि को कई भागों में बाँट दिया था और उसका बड़े स्तर पर नकली नामों में बेमानी हस्तांतरण कर दिया था। इसके कारण पुनर्वितरण के लिए बहुत कम अतिरिक्त भूमि प्राप्त हो सकी। इसके अतिरिक्त, कानून संतोषजनक ढंग से लागू नहीं किए गए। कानून तोड़ने के बदले किसी सज़ा का प्रावधान न होने से इससे बचने की प्रवृत्ति में और भी वृद्धि हुई।

उच्चतम सीमा कानून से बचने के रास्तों में से ऊँची उच्चतम सीमाएँ, हेराफेरी तथा गुप्त हस्तांतरण की गुंजाइश, विभिन्न प्रकार की भूमियों को सीमा कानून से छूट, काफी गंभीर थे। अब यह समझा जाने लगा है कि यदि भूमि का पुनर्वितरण उच्चतम सीमा कानून का मुख्य उद्देश्य था तो या बिल्कुल भी पूरा नहीं हो पाया है।

पहले चरण में उच्चतम कानूनों के प्रभावहीन होने, कृषि उत्पादन की अति आवश्यकता होने, व देश में कृषिक असंतोष होने से, इन कानूनों पर पुनर्विचार की तुरंत आवश्यकता थी। इस पुनर्विचार के आधार पर बने 'राष्ट्रीय दिशा निर्देश' 1972 के बाद के उच्चतम सीमा निर्धारण कानूनों के आधार बने।

1972 के बाद के चरण के कानूनों में सुधार लाए गए और उन्हें सारे देश में लगभग एक समान आधार पर लागू किया गया। ये राष्ट्रीय सहमति के आधार पर थे। इनमें उच्चतम सीमा काफी कम कर दी गई, छूट वाली भूमि की सूची छोटी कर दी गई, गुप्त हस्तांतरण पर नियंत्रण रखने के उपाय किए गए। लेकिन विभिन्न राज्यों

के कानूनों में कानूनी में अवश्य रह जो कि सुनिश्चित सिंचाई सुविधा वाली भूमि उच्चतम सीमा की बाहरी सीमाएँ, मुआवजों की दर तथा लागू होने की तिथि से संबंधित है। समस्या अब इन्हें प्रभावशाली ढंग से लागू करने की है।

### 14.3.4 कार्यान्वयन

ज़मींदारी उन्मूलन और भूमि के पुनर्वितरण के रूप में कृषिक भूमि के प्रश्न को सुलझाने में असफल रहे, बल्कि वे किसानों सामंती प्रकार के शोषण से भी पूरी तरह न बचा सके। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण (National Sample Survey) के 8वें चक्र (round) के अनुसार, 1953-54 में कृषि-भूमि का 20.34 पट्टों (leases) पर था। प्रमुख पट्टाकर्ता (lessor) बड़े-बड़े भूमि धारक थे जबकि सारे भारत में केवल 12.3 प्रतिशत भूमि के स्वामी ग्रामीण परिवारों ने भूमि पट्टे पर थी। सर्वेक्षण से पता चला है कि 50 एकड़ से अधिक भूमि के स्वामित्व वाले परिवारों ने अपना 36.26 प्रतिशत क्षेत्र पट्टे पर दिया, जबकि 30-50 एकड़ वालों ने 28.07 प्रतिशत दिया। ये सभी परिवार कुल ग्रामीण परिवारों के 3.31 प्रतिशत थे और उन्होंने 40.15 प्रतिशत भूमि पट्टे पर दी। यह स्थिति ज़मींदारी क्षेत्रों से दखलकारी काश्तकारी को स्वामी बनाने की घोषणा के बाद की थी।

शासकों ने कृषिक सुधारों के लिए केवल कानून पर भरोसा किया तथा इसके कार्यान्वयन की अनदेखी की। उनका विश्वास था कि कानून लागू करने से अपने आप ही इच्छित सामाजिक-आर्थिक परिणाम प्राप्त होने चालू हो जाएँगे। वास्तव कानूनों के कार्यान्वयन में ढील बहुत अधिक और बहुत पहले से है।

प्रभावहीन कार्यान्वयन के पीछे राजनीतिक इच्छा की कमी एक महत्वपूर्ण कारक रहा है। भूमि सुधारों को लागू करने की एकमात्र ज़िम्मेदारी कुछ प्रशासनिक एजेंसियों की समझी जाती रही है जो बिना किसी समयबद्ध कार्यक्रम के या किसानों को इसमें शामिल किए बिना ही इस कार्यक्रम को लागू करती है। कार्यान्वयन मुख्यतः संभावित लाभ उठाने वालों की चेतना और संगठन पर निर्भर होता है। सरकार और लाभ उठाने वालों के बीच सम्पर्क की कमी ने भूमि सुधारों से सम्पत्ति अधिकारी को प्रभावित करने वाले ढाँचागत परिवर्तन आते हैं। केवल प्रशासनिक अधिकारी ही ये परिवर्तन नहीं ला सकते। वास्तव में सरकारी मशीनरी अपने आप इस काम के अनुकूल नहीं बन पाई। सरकार में इच्छाशक्ति की कमी और उपरि दबावों के कारण सरकारी अधिकारियों के हाथ में यह कार्यक्रम असफल होता रहेगा। ऐसी स्थिति में सम्भावित लाभ उठाने वालों का इसमें शामिल होना बहुत महत्त्व रखता है।

### बोध प्रश्न 1

1) भूमि सुधार अवधि से पूर्व कृषिक परिस्थितियों का वर्णन कीजिए। (50 शब्दों में)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) आप समझाइए कि कृषिक सुधारों से क्या अभिप्राय है। (30 शब्दों में)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

- 3) विभिन्न भूमि सुधारों में मध्यस्थों के उन्मूलन की कुछ सफलता प्राप्त करने के पीछे कारण बताइए। (30 शब्दों में)

.....

.....

.....

.....

.....

- 4) सही और गलत बताइए।

- i) भूमि सुधारों से मोटे तौर पर अभिप्राय उन सुधारों से है जो किसानों के पक्ष में भूमि का पुनर्वितरण करते हैं। .....
- ii) स्वयं खेती कानून से बचने का एक रास्ता था जिसका उपयोग मध्यस्थों ने काश्तकारों को लाभ से वंचित रखने के लिए किया। .....
- iii) काश्तकारी कानून काश्तकारों की बड़े स्तर पर की गई बेदखली के लिए प्रयोग में लाए गए। .....
- iv) काश्तकार की परिभाषा में बटाइदार भी शामिल थे। .....
- v) कृषि भूमि की उच्चतम सीमा निर्धारित मुख्यतः एक पुनर्वितरण उपाय था। .....

## 14.4 कृषि संवृद्धि में प्रौद्योगिक कारकों का योगदान

अधिक उपज वाली किस्मों के प्रवेश से पूर्व भारत की खाद्य स्थिति गंभीर थी। खाद्य आयात निरंतर बढ़ रहा था। विश्व में खाद्य कमी वाले देशों की बढ़ती माँग के कारण इस आयात की भी संभावनाएँ गिर रही थीं। विश्व बाजार में खाद्य कीमतें ऊँची थीं और निरंतर बढ़ रही थी, जिससे आयात करने की क्षमता भी सीमित थी। भूमि उद्धार द्वारा कृषि के अधीन अधिक भूमि लाकर उत्पादन बढ़ाने की संभावनाएँ बहुत कम थीं। भविष्य में उत्पादन केवल उत्पादिता में वृद्धि लाकर ही बढ़ाया जा सकता था। इसलिए 1965 में चौथी योजना में कृषि के लिए एक नई रणनीति तैयार की गई। इसके निम्नलिखित उद्देश्य थे :

- i) सभी चरणों, विशेषतया खेतों, में कृषि उत्पादन की वैज्ञानिक विधियों एवं ज्ञान को प्रयोग में लाना।
- ii) वर्षा और सिंचाई के आधार पर कुछ क्षेत्रों का चुनाव करना और इनमें ऐसे उन्नत किस्म के बीजों पर आधारित आगतों के पैकेज का सकेन्द्रित प्रयोग करना जो उर्वरक व अन्य आधुनिक आगतों से मिलकर अच्छा उत्पादन में वृद्धि लाना।

उपरोक्त रणनीति बीजों की अधिक उपज की किस्मों (HYV) से नहीं बँधी थी। यदि ये बीज उपलब्ध न भी होते तो भी यह लागू की जाती।

### 14.4.1 बीजों की अधिक उपज वाली किस्में (HYV Seeds)

यह एक संयोग ही था कि कुछ अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के वर्षों के अनुसंधान व परीक्षणों के परिणाम स्वरूप बीजों की अधिक उपज वाली किस्म भारत में व्यापारिक खेती के लिए उपलब्ध हो गई थी। यह बीज कम अवधि का, छोटे तने का तथा उर्वरक प्रभावी था। इससे कृषि विकास रणनीति में नाटकीय परिवर्तन आया। यह पारम्परिक कृषि की ओर था। इसमें उर्वरक, जीवनाशक, दवाइयाँ, बिजली व डीजल के पम्प, ट्रेक्टर, हार्वेस्टर कम्बाइन (फसल काटने की मशीन) जैसी गैर-खेती आगतों का प्रयोग किया गया। इस अधिक उपज वाली किस्मों की प्रौद्योगिकी के ऐसे शानदार परिणाम निकले कि इसे हरित क्रांति की संज्ञा दी गई। 1960-61 से 1964-65 में यह औसत 8 करोड़ 30 लाख टन थी। यह इसके बावजूद है कि यह वृद्धि कुछ अनाज फसलों तक ही सीमित थी और वह भी अच्छी सिंचाई सुविधा, उर्वरक के उपयोग तथा बीजों की अधिक उपज वाली किस्मों का निर्धारण था।



तालिका : 1 कृषि आगतों के उपयोग में प्रगति

सांस्थानिक तथा  
प्रौद्योगिक कारक

अधिक उपज वाली किस्मों के अधीन क्षेत्र	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91	1994-95
धान	8.9	55.9	182.9	273.9	310.2
गेहूँ	5.4	64.8	161.8	209.7	232.5
ज्वार	1.6	8.0	35.0	70.7	0.8
बाजरा	0.6	20.5	36.4	57.0	53.9
मक्का	2.1	4.6	16.0	26.1	33.8
<b>कुल</b>	<b>18.9</b>	<b>153.8</b>	<b>430.8</b>	<b>649.8</b>	<b>712.7</b>

रासायनिक उर्वरकों का उपभोग (लाख टन में )

कुल (N+P+K)	2.92	21.77	55.16	125.46	135.64
प्रति हेक्टेयर (किलोग्राम)	1.90	13.13	31.83	67.49	75.68

स्रोत : Agricultural Statistics at a Glance DE & S, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, 1996।

अधिक उपज वाली किस्मों की प्रगति तालिका 1 में दिखाई गई है। इन किस्मों के अधीन चावल का क्षेत्र जोकि 1966-67 में 8.8 लाख हेक्टेयर था 1994-95 तक बढ़कर 310.2 लाख हेक्टेयर हो गया। गेहूँ के अधीन यह क्षेत्र 5.4 लाख हेक्टेयर से बढ़कर 232.5 लाख हेक्टेयर हो गया। लेकिन मक्का, ज्वार, बाजरा में कम सफलता मिली।

उन फसलों का क्षेत्र, जिनमें अधिक उपज वाली किस्मों को प्रयोग किया गया, इसी अवधि में 18.9 लाख हेक्टेयर हो गया। 1996-67 में अधिक उपज वाली किस्मों के अधीन क्षेत्र कुल क्षेत्र का चावल में 2.5 प्रतिशत, गेहूँ में 4.2 प्रतिशत, मक्का में 4.1 प्रतिशत, ज्वार में 1.05 प्रतिशत तथा बाजरा में 0.5 प्रतिशत था। 1993-94 में चावल में यह 67.5 प्रतिशत, गेहूँ में 88 प्रतिशत, मक्का में 50 प्रतिशत, ज्वार में 53.2 प्रतिशत और बाजरा में 54.5 प्रतिशत हो गया। खाद्यान्न में अधिक उपज वाली किस्मों वाला कुल क्षेत्र 1966-67 में 1.63 प्रतिशत से बढ़कर 1993-94 में 54.3 प्रतिशत हो गया।

कार्यक्रम की शानदार सफलता के कारण अनाजों (विशेषतया चावल और गेहूँ) में और कुल खाद्यान्न में भी भारी वृद्धि हुई। चावल की उत्पादितता जोकि 1996-67 में केवल 863 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर थी। 1993-94 में बढ़कर 1888 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर हो गई यानि दुगने से भी अधिक हो गई। गेहूँ का कुल उत्पादन क्रमशः 2.6 व 5.3 गुना बढ़ा। ऐसी ऊँची उपज दर होने के कारण इनके अधीन क्षेत्र में वृद्धि के कारण था। मक्का, ज्वार और बाजरा में ज्यादा सुधार नहीं हुआ। अधिक उपज वाली किस्मों के कार्यक्रम की सफलता की कहानी केवल दो प्रमुख खाद्यान्नों यानि चावल और गेहूँ तक ही सीमित थी। यह भी भारत के कुछ राज्यों तक ही सीमित थी, विशेषतया गेहूँ में। गेहूँ में यह सफलता पंजाब, हरियाणा व उत्तर प्रदेश (पश्चिमी) में मिली जहाँ पानी काफी मात्रा में उपलब्ध था। एक सीमा तक सरकार की प्रोत्साहन कीमत समर्थन नीति ने भी बीजों के प्रयोग में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

वास्तव में गेहूँ उत्पादन देश के कुल खाद्यान्न उत्पादन को स्थायित्व प्रदान करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक बन गया है। अब पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, असम, पूर्वी बिहार और उड़ीसा जैसे गैर-पारम्परिक क्षेत्रों में भी गेहूँ का उत्पादन होने लगा है। अधिक उपज की किस्मों के अधीन धान की खेती ने भी उन्नति की है। लेकिन उतनी नहीं जितनी की गेहूँ की खेती ने। यह इस कारण से है क्योंकि यह वर्षा पर निर्भर है और खरीफ के मौसम में उगाई जाती है जब मानसून अनिश्चित रहता है, जिससे या तो सूखा पड़ जाता है या फिर बाढ़ आ जाती है। इस फसल को जीव भी अधिक नष्ट करते हैं और इसमें बीमारी होने की संभावना भी अधिक रहती है। लेकिन रबी के मौसम में (यानि सर्दी में) जब वर्षा कम होती है और जल का प्रबंध से बेहतर परिणाम प्राप्त हुए है। अधिक उपज की किस्मों के कारण अब चावल के गैर-पारम्परिक क्षेत्रों, जैसे पंजाब, हरियाणा

तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भी तेजगति से उत्पादन हो रहा है। स्थानीय उपभोग सीमित होने के कारण इसका केन्द्र द्वारा सरकारी खरीद में भी अच्छा अनुपात है।

### 14.4.2 सिंचाई तथा जल प्रयोग

पौधों के बढ़ने के लिए पानी एक अत्यावश्यक आगत है। भारत में जल का एक मुख्य स्रोत वर्षा है। औसत वार्षिक वर्षा लगभग 1200 मिलिमीटर है लेकिन यह मौसमी है तथा इसका भौगोलिक वितरण असमान है। देश के कुछ क्षेत्रों में, जैसे कि पश्चिमी राजस्थान में, वर्षा 200 मिलिमीटर से भी कम है। अन्यो में, जबकि दक्षिण-पश्चिम भारत और असम के कुछ भागों में, यह 4000 मिलिमीटर तक है। भारत के कई प्रदेशों में 75 प्रतिशत वर्षा दक्षिण पश्चिम मानसून से मिलती है जो कि जून से सितम्बर चार महीने रहती है। भारत के बहुत कम प्रदेशों में सर्दी और गर्मी के मौसमों में वर्षा होती है। शुद्ध बोया क्षेत्र का लगभग 34 प्रतिशत कम वर्षा वाले इलाकों में है जहाँ वार्षिक वर्षण 750 मिलिमीटर से कम रहता है। 36 प्रतिशत क्षेत्र में 750 से 1150 मिलिमीटर तक वर्षा होती है। बाकी 30 प्रतिशत शुद्ध बोया क्षेत्र को अच्छी वर्षा का लाभ मिलता है जहाँ 1150 मिलिमीटर से अधिक वर्षा होती है। वर्षा ऋतु में वर्षा न होने, या देर से होने या फिर जल्दी समाप्त हो जाने से फसलों में अनिश्चितता की स्थिति हो जाती है। इस अनिश्चित वर्षा के कारण खरीफ के मौसम में पानी की कमी को पूरा करने के लिए, कम वर्षा या अधिक वर्षा वाले सभी क्षेत्रों में सिंचाई व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है।

भारतीय कृषि में सिंचाई का बहुत महत्त्व है। इसका महत्त्व केवल अच्छी फसल के लिए ही नहीं देश के खाद्य उत्पादन में वृद्धि लाने में भी है। सिंचाई सुविधाओं द्वारा सारा साल पानी उपलब्ध करवाकर दोहरी फसल उगा सकते हैं और वर्षा की अनिश्चितता से बच सकते हैं। देश के खेती के अधीन अतिरिक्त भूमि लाने के अवसर कम हैं। ऐसे में सिंचाई सुविधाएँ गहन खेती के माध्यम से अतिरिक्त भूमि का उपयोग कर सकती हैं। गहन खेती और भूमि की उत्पादिता में वृद्धि बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्यान्न व कृषि में वृद्धि ला सकती है।

भारत की अधिकतर सफल हरित क्रांति क्षेत्र, क्रांति से पूर्व की अवधि में अपने विकसित नहर सिंचाई प्रणाली के लिए प्रसिद्ध थे। खेती में नई किस्मों का प्रयोग करने के लिए सुनिश्चित जल आपूर्ति आवश्यक है चाहे ये भारी वर्षा वाले क्षेत्र ही हों, जैसे कि दक्षिण भारत के डेल्टा क्षेत्र। बौने आकार की नई किस्में बाढ़ वाले निचले क्षेत्रों में नहीं लाई जा सकती जहाँ परम्परागत ऊँचे आकार की किस्में जल से भरे खेतों में लगाई जाती रही है। फिर भी इस बात के प्रयत्न जारी है अधिक उपज वाली किस्मों का उपयोग गहरे पानी में किया जा सके। 1972 के सिंचाई आयोग के अनुसार, शुद्ध सिंचित क्षेत्र जोकि 1934-35 को समाप्त होने वाले पाँच वर्षों में बढ़कर 194 लाख हेक्टेयर हो गया यानि 13.5 प्रतिशत बढ़ा। इसी अवधि में सरकारी नहरों द्वारा सिंचित क्षेत्र 28 प्रतिशत और कुओं से सिंचित क्षेत्र 10.4 प्रतिशत बढ़ा।

तालिका 2 : भूमि उपयोग वर्गीकरण के कुछ वर्ग

वर्ष	शुद्ध बोया क्षेत्र (लाख हेक्टेयर)	शुद्ध सिंचित क्षेत्र (लाख हेक्टेयर)	सिंचित शुद्ध बोया क्षेत्र का प्रतिशत	सकल बोया क्षेत्र का प्रतिशत	सकल सिंचित क्षेत्र (लाख हेक्टेयर)	सिंचित सकल क्षेत्र का प्रतिशत	फसल गहनता
1950-51	1187.5	208.5	17.56	1318.9	225.6	17.11	111
1955-56	1299.6	227.6	17.62	1473.1	256.4	17.41	114
1960-61	1332.0	246.6	18.51	1527.7	279.8	18.32	114
1965-66	1362.0	263.4	19.34	1552.8	309.0	19.90	114
1970-71	1402.7	311.0	22.17	1657.9	381.2	23.04	118
1980-81	1400.0	387.2	27.66	1726.3	497.8	28.84	123
1990-91	1422.5	477.8	33.59	1859.1	624.7	23.60	130

स्रोत : Indian Agriculture in brief.

योजना काल के प्रारंभ में अधिक से अधिक क्षेत्र सिंचाई के अधीन लाने पर ज़ोर दिया गया। 1990-91 तक शुद्ध सिंचित क्षेत्र बढ़कर 477.8 लाख हेक्टेयर हो गया था जोकि 1950-51 में 208.5 लाख हेक्टेयर था। हरित क्रांति के बाद की अवधि में यह 2.41 प्रतिशत प्रतिवर्ष बढ़ी दर भी हरित क्रांति से पूर्व की अवधि में यह वृद्धि-दर 1.57 प्रतिशत थी। सकल सिंचित क्षेत्र की वृद्धि-दर भी हरित क्रांति के बाद ही अवधि में अधिक थी। इससे यह अर्थ निकलता है कि हरित क्रांति के बाद की अवधि में उपलब्ध सिंचाई सुविधाओं का गहन उपयोग किया गया।

दूसरी ओर, क्रांति से पूर्व की अवधि यानि 1950-51 से 1965-65 शुद्ध सिंचित क्षेत्र का शुद्ध बोया क्षेत्र अनुपात मंदगति से बढ़ा और 17.56 प्रतिशत से बढ़कर 19.34 प्रतिशत हो गया। सकल सिंचित क्षेत्र का सकल बोया क्षेत्र से यह अनुपात 17.11 प्रतिशत से बढ़कर 19.9 प्रतिशत हो गया। क्रांति से बाद की अवधि में ये दरें तेज गति से बढ़ीं। ऐसा सकल गहनता से भी पता चलता है जोकि 1950-51 में 111.1 से बढ़कर 1990-91 में 130.79 हो गई।

प्रारंभ में शुद्ध सिंचित क्षेत्र में वृद्धि नहरों और कुँओं के माध्यम से थी। तालिका 3 के अनुसार, इन दो साधनों से सिंचित क्षेत्र का प्रतिशत 1950-51 में 68.5 था जो 1960-61 तक बढ़कर 71.1 प्रतिशत हो गया। 1960 के दशक के मध्य से ट्यूबवैल द्वारा सिंचाई तेजी से बढ़ी। इसका अर्थ है कि सिंचाई की गुणवत्ता में सुधार आया है और हरित क्रांति के बाद की अवधि में यह अधिक सुनिश्चित हो गई है।

तालिका 3 : स्रोतों के अनुसार सिंचित क्षेत्र

(हजार हैक्टर में)

स्रोत	1950-51	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91
नहरें	8295(39.8)	10370(42.1)	12838(41.3)	15292(39.5)	16900(35.7)
तालाब	3613(17.3)	4561(18.5)	4112(13.2)	3182(8.2)	3245(6.2)
ट्यूबवैल	(a)	135(0.6)	4461(14.3)	9531(24.6)	142111(29.9)
अन्य कुँए	5978(28.7)	7155(29.0)	7426(23.9)	8164(21.1)	9999(21.1)
अन्य स्रोत	296(14.2)	2440(9.8)	2266(7.3)	2551(6.6)	3079(6.5)
कुल शुद्ध सिंचित क्षेत्र	20853 (100.00)	24661 (100.00)	31103 (100.00)	38720 (100.00)	47434 (100.00)

(कोष्ठक में दिए गए अंक प्रतिशत हैं)

(a) अलग आँकड़े ने मिलने के कारण 'अन्य कुँए' में शामिल

स्रोत : Indian Agriculture in brief, 25th Ed., कृषि मंत्रालय भारत सरकार।

### 14.4.3 रासायनिक उर्वरक

तेजी से बढ़ती जनसंख्या और गैर कृषि कार्यों के लिए भूमि की बढ़ती हुई माँग से भूमि पर दबाव बढ़ता जा रहा है। ऐसे में आवश्यक है कि मुख्य बल प्रति हेक्टेयर उत्पादिता बढ़ाने और गहन खेती पर हो। शुद्ध बोया क्षेत्र लोचहीन रहा है और 1970-71 से 1992-93 में इससे कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई है। 1970-71 में यह 1402.7 लाख हेक्टेयर था जोकि 1992-93 तक यह 1425.01 लाख हेक्टेयर हुआ। यह वृद्धि बहुत मामूली यानि 0.07 प्रतिशत प्रतिवर्ष था। कृषि उत्पादन में वृद्धि लाने के लिए पौधे के पोषक के रूप में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग आवश्यक है। भूमि-मानव अनुपात निरंतर घटने के कारण भूमि की उत्पादिता में वृद्धि लाना आवश्यक है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उर्वरक एक महत्वपूर्ण आगत है। उर्वरक की मात्रा फसल के प्रकार, की उपलब्धता तथा खेती के प्रबंध की विधियों पर निर्भर रहती है। यह हम पहले ही बता चुके हैं। उर्वरक प्रयोग करने पर नई किस्में अच्छा परिणाम देती हैं। पारम्परिक किस्मों के साथ उर्वरक का अधिक प्रयोग केवल परिणाम किस्मों के साथ उर्वरक का अधिक प्रयोग केवल सीमित परिणाम देता है। नई किस्मों के साथ उर्वरक का प्रयोग उपज बढ़ाने में बहुत सहायक है। अतः नई किस्मों पर प्रौद्योगिकी की सफलता के लिए उर्वरक की उचित मात्रा में आपूर्ति एक आवश्यक शर्त है।

प्रारंभ के लिए भारत में उर्वरक का उपभोग का स्तर काफी नीचा था। यह एक किलोग्राम प्रति हेक्टेयर से भी कम था। 1960-61 तक यह थोड़ा-सा बढ़कर 1.90 किलोग्राम हो गया। लेकिन बीजों की अधिक उपज वाली किस्मों के आने से इसका उपभोग में अचानक तेजी आ गई। 1970-71 में उर्वरक का उपभोग बढ़कर 13.3 किलोग्राम हो गया। ऐसा बीजों की अधिक उपजवाली किस्मों के आने से हुआ। 1980-81 तक यह बढ़कर 31.83 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर हो गया। 1994-95 तक यह 74.5 किलोग्राम तक पहुँच गया। लेकिन भारत की तुलना में अन्य एशियाई देशों, जैसे कोरिया और जापान, में यह क्रमशः 399.7 किलोग्राम है।

नाइट्रोजन उर्वरक का घरेलू उत्पादन 1960-61 में 98 हजार टन से बढ़कर 1945-95 में 10438 हजार टन हो गया। लेकिन भारतीय किसान उर्वरक के लिए अभी आयात पर भारी निर्भर है। उर्वरक के आयात निरंतर बढ़ते रहे हैं और इस समय ये 29.65 लाख टन के स्तर पर है जोकि कुल उपभोग का 22 प्रतिशत है।

1960 के दशक के मध्य से कृषि के उत्पादन और उत्पादिता में भारी वृद्धि अधिक उपज वाली किस्मों के साथ उर्वरक के बढ़ते उपयोग के कारण प्राप्त हुई। उर्वरक के साथ बेहतर बीजों का और सिंचाई का प्रयोग सफलता की कुंजी है। हालाँकि योजनाकाल के प्रारंभ से ही उर्वरकों के महत्त्व का पता था। लेकिन इसका अधिक उपभोग नई कृषि प्रौद्योगिकी के आने से ही हुआ जिसमें गैर-पारम्परिक आगतों की आवश्यकता थी।

उर्वरक उपभोग में वृद्धि के साथ-साथ उत्पादन और वितरण संबंधी बुनियादी सुविधाओं को भी मजबूती देना आवश्यक है ताकि सही प्रकार के उर्वरक किसान को सही समय पर, सही स्थान पर और सही कीमत पर मिल सकें। इसके साथ-साथ किसानों को विस्तार समर्थन देना और अन्य आगतों जैसे सिंचाई, ऋण, बढ़िया बीज उपलब्ध करवाना भी आवश्यक है।

#### 14.4.4 यंत्रीकरण

समय के साथ-साथ जब शक्ति के जैविक स्रोत मशीनी स्रोत की अपेक्षा महँगे होने लगते हैं तो यंत्रीकरण को बढ़ावा मिलता है। इसका एक कारण तो यह है कि जब प्रौद्योगिकी में परिवर्तन आता है तो इससे श्रम की बचत होती है और कृषि में श्रम के स्थान पर पूँजी का प्रयोग में लाना आसान रहता है। साथ-साथ जब किसान की आय बढ़ने लगती है तो उसे शारीरिक परिश्रम नीरस लगने लगता है। यंत्रीकरण से किसान को काफी खाली समय मिल सकता है और काम करने से उसका मन भी लग सकता है। वे भी अब खेती करने को तैयार हो सकते हैं जो शारीरिक परिश्रम की नीरसता से बचना चाहते हैं। हनुमन्त राव के अनुसार यदि खाद्य आपूर्ति अनिवार्यताओं के अतिरिक्त मशीनें, विशेषता ट्रैक्टर, किसान की प्रतिष्ठा में भी वृद्धि लाती हैं।

जीवरासायनी नवप्रर्वतन (Innovations) मशीनी नवप्रर्वतनों के सहायता से और प्रभावशाली हो जाते हैं। बीजों की अधिक उपज वाली किस्मों को सिंचाई की भारी व नियंत्रित मात्रा की आवश्यकता होती है। क्योंकि अधिक उपजवाली किस्मों की फसल जल्दी पक जाती है, तो फसल काटने की और अगली फसल बोने की तैयारी समय सारणी के अनुसार पूरी करनी पड़ती है। अतः समय पर विभिन्न खेती प्रक्रियाओं को पूरा करने में बहुत सहायक होते हैं और ये फसल की गहनता में वृद्धि लाते हैं।

तालिका 4 : कुछ कृषि उपकरणों व मशीनों की संख्या (हजारों में)

मर्दें	1966	1987
1. हल (लकड़ी के व लोहे के)	43446	51888
2. डीजल एंजिन (पम्पसेट)	471	116666
3. सिंचाई के लिए प्रयुक्त बिजली के पम्प	415	4518
4. कृषि के लिए प्रयुक्त ट्रैक्टर	54	738
5. थ्रेशर (Threshers)	349	515
6. गन्ना कोल्हू/ पशु-गाड़ी	695	748

स्रोत : (Livestock Census - 1966, 1987)

1966 से तालिका 4 से भारतीय कृषि में 1966 से यंत्रीकरण के आँकड़े दिए गए हैं। नई प्रौद्योगिकी अपनाने के समय 1966 में यंत्रीकरण बहुत कम था। लेकिन इसके बाद से यंत्रीकरण की गति तेज़ी से बढ़ने लगी। खेत की सिंचाई के लिए एंजिन से चलने वाले पम्पसेट व बिजली के पम्पसेट, चार पहियों वाले ट्रैक्टर, श्रेसर आदि प्रयोग में आने लगे। बिजली के पम्पसेट की संख्या 1966 में 415 हजार से बढ़कर 1987 में 4518 हजार हो गई यानि लगभग 10 गुना बढ़ी।

नई किस्मों के आने के साथ देश में ट्रैक्टरों के उपयोग में वृद्धि के पीछे कई कारक थे। पूर्तिपक्ष पर चीज़ों की अधिक उपज वाली किस्में प्रयोग आने लगी थी। साथ-साथ ऋण नीति भी उदार कर दी गई थी जिससे कृषि खरीदना आसान हो गया था।

लेकिन केवल आसान ऋण के कारण ही ट्रैक्टरों के उपयोग में वृद्धि नहीं हुई। 1970 तक केवल 10 प्रतिशत ट्रैक्टर संस्थानिक ऋण के द्वारा खरीदे गए थे। ये अधिकतर निजी स्रोतों से प्राप्त वित्त से खरीदे गए थे। इसके अतिरिक्त लाभ में से आया था। एक और महत्वपूर्ण कारक था सरकार द्वारा ट्रैक्टरों के आपात को उदार बनाना और घरेलू उत्पादन को प्रोत्साहन देना। देश में 1966 में ट्रैक्टर की संख्या 54 हजार से बढ़कर 1987 में 738 हजार हो गई। यानि यह हरित क्रांति की बाद की अवधि में लगभग 14 गुना बढ़ी।

माँग पक्ष पर, ट्रैक्टर तीन प्रकार के कार्यों के लिए प्रयोग में आता है, जुताई, गुड़ाई और परिवहन के लिए। इन सभी कार्यों में ट्रैक्टर ने बैल शक्ति और मानव श्रम का स्थान लिया है। बैल एक ग्रामीण परिवार के बहुत सारे काम करता है। यह जुताई, गुड़ाई और ढुलाई करता है, पानी निकालता है और साथ-साथ खाद का साधन भी है। लेकिन ट्रैक्टर का लाभ यह है कि इससे समय की बचत होती है और विशेष कृषि कार्य समय पर पूरा किया जा सकता है। नए बीजों के प्रयोग में समय पर जुताई करने की आवश्यकता अधिक होती है। ऐसे में बैलों की बजाय ट्रैक्टर अधिक विश्वसनीय होते हैं। उर्वरक, बीज, फसल, उत्पादन और लोगों के परिवहन में भी बहुत प्रयोग में आता है।

### बोध प्रश्न 2

1) अधिक उपज वाली किस्मों के आने के समय भारत में खाद्य स्थिति का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) उत्पादन में वृद्धि लाने हेतु चौथी योजना में कौन-सी नई रणनीति अपनाई गई थी। (तीन वाक्यों में)

.....

.....

.....

.....

.....

3) नवीन प्रौद्योगिकी की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

4) सही के लिए 'स' और गलत के लिए 'ग' लिखिए।

- i) 1960 के दशक के मध्य तक क्षेत्र का विस्तार करके उत्पादन बढ़ाने की संभावनाएँ समाप्त हो गई थी। ( )
- ii) कृषि का यंत्रीकरण अधिक उपज वाली किस्मों की प्रौद्योगिकी की मुख्य विशेषता थी। ( )
- iii) अधिक उपज वाली किस्मों की सफलता की कहानी केवल चावल और गेहूँ तक ही सीमित थी। ( )
- iv) भारत में प्रति हेक्टेयर उर्वरक उपभोग कोरिया (DPR) तथा जापान की तुलना में अधिक है। ( )
- v) सिंचाई अधिक उपजवाली किस्मों की प्रौद्योगिकी को लागू करने की पहली शर्त है। ( )

## 14.5 सारांश

आज़ादी के समय भारतीय कृषि में गरीब किसानों और भूमिहीन श्रमिकों की प्रधानता थी। खेती क्षेत्र का एक बड़ा प्रतिशत धनी किसानों तथा भूस्वामी महाजनों के छोटे से वर्ग के पास था। उत्पादन स्वरूप पुराना था। कृषिक संबंध सामंती या सामंती प्रकार के थे। ऊँचे किरायों, काश्तकारी असुरक्षा, जबरन श्रम, सूदखोरी आदि द्वारा किसानों का शोषण होता था। इससे किसान कंगाल हो गया था और कृषि उत्पादन गतिहीन हो गया था। इसलिए आज़ादी के तुरंत बाद कृषिक सुधार प्रारंभ हो गए।

ये सुधार मध्यस्थों के उन्मूलन, भूमि की उच्चतम सीमा के निर्धारण द्वारा भूमि का पुनर्वितरण, काश्तकारी सुरक्षा और खेतों की चकबंदी के रूप में थे। मध्यस्थों के उन्मूलन के रूप में कृषिक सुधार भूमि प्रश्न को हल करने में असफल रहे। मध्यस्थों के उन्मूलन का भूमि स्वामित्व में असमानताओं और बटाईदार भूमिहीन मज़दूरों की स्थिति पर कोई प्रभाव न पड़ा। फिर भी इससे दखली काश्तकारों को स्थायी, वंशागत व हस्तांतरण अधिकार प्राप्त करने में सहायता मिली। काश्तकारों सुधारों का यह मुख्य उद्देश्य कि काश्तकारों को भूमि का स्वामी बनाया जाए पास नहीं हो सका। ऐसा अब स्पष्ट है कि यदि उच्चतम सीमा निर्धारण कानूनों का उद्देश्य भूमि का पुनर्वितरण था तो यह बिल्कुल भी पूरा नहीं हो पाया।

अधिक उपजवाली किस्मों के आने से पहले भारत की खाद्य स्थिति काफी गंभीर थी। विश्व में खाद्यान्न की कमी वाली देशों की बढ़ती माँग के कारण विश्व आपूर्ति अनिश्चित हो गई थी और खाद्यान्न आयात की संभावना भी लगभग समाप्त हो रही थी। खाद्यान्न के अधीन क्षेत्र के विस्तार द्वारा उत्पादन बढ़ाने की संभावना भी समाप्त हो रही थी। केवल एक ही विकल्प बचा था उत्पादिता में वृद्धि लाना।

ठीक इसी समय गेहूँ और चावल की ऐसी उन्नत किस्में उपलब्ध होने लगीं जिनपर उर्वरक और सिंचाई का अच्छा प्रभाव पड़ता है। इनके प्रयोग से गेहूँ और चावल के उत्पादन और उत्पादिता में असाधारण वृद्धि हुई। बीजों की अधिक उपजवाली किस्मों के अधीन क्षेत्र के विस्तार के साथ-साथ तकनीकी आगतों का भी प्रयोग बढ़ा। इस प्रौद्योगिकी की सफलता की पहली शर्त यह है कि उर्वरक आपूर्ति उपयुक्त हो। सुनिश्चित ट्यूबवैल सिंचाई द्वारा सारा वर्ष पानी उपलब्ध होने से अधिक उपज वाली किस्मों की फसलों की उत्पादिता बढ़ी और कम्बाइन हारवेस्टर, ने बैल शक्ति और मानव श्रम का स्थान ले लिया। इसका लाभ यह था कि कृषि प्रक्रियाएँ समय पर पूरी की जा सकती थी। इससे एक ओर तो फसल गहनता बढ़ी तथा दूसरी ओर उत्पादिता बढ़ी।

## 14.6 शब्दावली

भू-सम्पदा संबंधी सुधार

: इसका तात्पर्य मध्यस्थों के उन्मूलन, भूमि-स्वामित्व की उच्चतम सीमा निर्धारण के माध्यम से भूमि का साम्य वितरण एवं पट्टेदारी की सुरक्षा से है।

- सामन्तिक कृषि संबंध** : वह कृषि प्रणाली जिसमें किसानों का शोषण, पट्टेदारी की असुरक्षा, ऊँची ऋण-दर इत्यादि के ज़रिए, जिसका नतीजा होता है : किसानों की गरीबी और कृषि उत्पादन में निष्प्रवाहता।
- मध्यस्थों का उन्मूलन** : ज़मींदारी का उन्मूलन क्योंकि वे किसानों का शोषण करते थे और सरकार और किसानों में प्रत्यक्ष संबंध की स्थापना।
- काश्तकारी सुधार** : इसका अर्थ है पट्टेदारी की व्यवस्था में सुधार। इसमें शामिल हैं : (क) पट्टेदारी की सुरक्षा, (ख) किराया का नियंत्रण तथा, (ग) स्वामित्व प्रदान करना।
- भूमि-स्वामित्व की उच्चतम सीमा** : यह एक नीति है जिसका उद्देश्य है भूमि का समान वितरण। इससे भूमिहीन कृषि श्रमिक तथा सीमांत किसानों में भूमि का पुनः वितरण किया जाता है।

## 14.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Khusro, A.M. (1973), *Economics of Land Reform and Farm Size in India*, Macmillan, Delhi.

Joshi P.C. (1976), *Land Reforms in India, Trends and Perspectives*, Allied, Delhi.

Rao C.H.H. (1975), *Technological Change and the Distribution of Gains in Indian Agriculture*, Macmillan, Delhi.

Rao C.H.H. (1994), *Agricultural Growth, Rural Poverty and Environment Degradation in India*, Oxford University Press, Delhi.

Sharma, R.K. (1992), *Technical Change, Income Distribution and Rural Poverty: A Case Study of Haryana*.

## 14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

### बोध प्रश्न 1

- 1) उत्तर के लिए भाग 14.2 देखें।
- 2) उत्तर के लिए भाग 14.3 देखें।
- 3) उत्तर के लिए उप-भाग 14.3.1 देखें।
- 4) (i) सही (ii) सही (iii) सही (iv) सही (v) सही

### बोध प्रश्न 2

- 1) उत्तर के लिए भाग 14.4 देखें।
- 2) उत्तर के लिए भाग 14.4 देखें।
- 3) (i) सही (ii) सही (iii) सही (iv) सही